भारतीय अर्थव्यवस्था : समीक्षा, संभावनाएं तथा चुनिंदा मुद्दे*

या.वे.रेड्डी

प्रसिद्ध सेंट्रल बैंक ऑफ चिली में आने के लिए गवर्नर कोर्बो द्वारा सादर आमंत्रित किये जाने से मैं गौरवान्वित हुआ हूं। भारतीय रिज़र्व बैंक में हम इस सौजन्य का भारी सम्मान करते हैं। गवर्नर कोर्बो का विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर जटिल विषयों पर अपनी सुबोध व्याख्या के लिए सम्मान किया जाता है । जहां चिली में मौद्रिक नीति की चुनौतियों पर उनका विश्लेषण केंद्रीय बैंकरों के लिए रुचि का विषय है, वहीं वैश्विक गतिविधियों पर विशेषकर उदीयमान बाजारी अर्थव्यवस्थाओं के बारे में उनकी समझ का भी सम्मान किया जाता है। चिली की अर्थव्यवस्था के गत 15 वर्षों में कार्य-निष्पादन ने अंतर्राष्ट्रीय रुचि को आकर्षित किया है और इसे अकसर संरचनागत सुधारों, उदारीकरण और स्थिरीकरण का आकर्षक मॉडल माना जाता है। पूंजी प्रवाहों के प्रबंधन में चिली के अनुभव तथा सीमापार के पूंजी प्रवाहों पर चिली के जैसे कर के बारे में शैक्षिक जगत तथा नीति निर्माताओं के क्षेत्रों में अकसर चर्चा की जाती है।

गवर्नर कोर्बो का जनवरी 2004 में भारत में आगमन तथा भारतीय रिज़र्व बैंक में उनका आगमन हाल के वर्षों में लेटिन अमरीका के किसी गवर्नर का पहला आगमन रहा है। चिली की अर्थव्यवस्था में हाल की गतिविधियों तथा संभावनाओं पर दिये गये उनके विद्वतापूर्ण भाषण की रिज़र्व बैंक में भारी सराहना की गयी।

आज के मेरे वक्तव्य में भारतीय अर्थव्यवस्था की संक्षिप्त समीक्षा, उसके बाद अल्पावधिक तथा मध्यावधिक संभावनाओं का आकलन होगा। मैं भारत में मुद्रा और वित्त के क्षेत्र में नीति के संचालन में चुनिंदा मुद्दों पर, जो यहां श्रोताओं के लिए भी रुचिकर हो सकते हैं, चर्चा करते हुए अपनी बात समाप्त करूंगा।

I. भारतीय अर्थव्यवस्था की संक्षिप्त समीक्षा

1950 में अपनाये गये भारत के संविधान ने संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की है तथा भारत सभी के लिए वयस्क

* डा. या.वे.रेड्डी, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा बैंको सेन्ट्रल डि चिली में 7 जून 2007 को दिया गया भाषण।

मताधिकार वाला गणतंत्र है जिसने इसकी राजनैतिक प्रणाली की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण योगदान किया है। अब यह 28 राज्यों तथा 7 केंद्रशासित प्रदेशों का संघ है। जहां सबसे बड़े राज्य (उत्तर प्रदेश) की जनसंख्या 16 करोड़ 60 लाख है, वहीं सबसे छोटे राज्य (सिक्किम) की जनसंख्या मात्र 5.4 लाख है। विभिन्न राज्यों में अधिकांश जनसंख्या के धर्म (विश्वास) के साथ-साथ अन्य विभिन्न धार्मिक आस्थाओं जैसे हिंदू, मुस्लिम, ईसाई और बौद्ध धर्म के अनुयायी भी रहते हैं। भारत में विश्व में जोरास्ट्रियन (प्राचीन परसियन) मत के अनुयायी सबसे बड़ी तादात में रहते हैं। भारत में संविधान द्वारा मान्यताप्राप्त 22 प्रमुख भाषाएं हैं जो बहुत बड़े समाज द्वारा बोली जाती हैं। जहां राज्यों की सीमाएं कमोबेश भाषा पर आधारित हैं, वहीं गत अवधि में सीमाओं में स्थानीय भावनाओं का समादर करते हुए थोड़ा बहुत बदलाव भी किया गया है। यह किसी संघ के लिए अतुलनीय है तथा यह निभाव की एक ज्वलंत भावना को दर्शाती है। इसके अलावा स्थानीय स्वशासन ग्रामों के स्तर तक स्थापित है, जिसका आदेश संविधान में ही दिया गया है।

वृद्धि

18वीं शताब्दी से ही भारत को कभी-कभी पुनः उभरती हुई अर्थव्यवस्था कहा गया है। इस क्षेत्र को विश्व उत्पाद का एक चौथाई भाग माना गया था, परंतु यह इतिहास का भाग बन गया है। भारत के भौगोलिक क्षेत्र में 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में सदेउ की वार्षिक वृद्धि दर औसतन 0.9 प्रतिशत वार्षिक और प्रति व्यक्ति आय औसतन 0.1 प्रतिशत वार्षिक रहने का अनुमान किया गया है। स्वतंत्र भारत की अर्थव्यवस्था को, जो समकालीन रुचि की बात है, द्वितीय विश्व युद्ध, देश के विभाजन के दंश, 500 से अधिक संख्या में राजवाड़ों (राजसी प्रदेशों) के समेकन तथा निम्नस्तर की सदेउ की समस्या जैसे लम्बे समय से चले आ रहे मुद्दों से निपटना पड़ा।

1950 से 1980 के दौरान 3.5 प्रतिशत की वार्षिक औसत वृद्धि दर थी जो 1980 और 1990 के दशकों के दौरान बढ़कर 6.0 प्रतिशत हो गयी। गत चार वर्षों (2003-04 से 2006-07) में भारतीय अर्थव्यवस्था 8.6 प्रतिशत की दर से बढ़ी। 2005-06 और 2006-07 में यह क्रमशः 9.0 और 9.4 प्रतिशत की दर से बढ़ी है।

स्थिरता

इस चौथाई दशक के दौरान उच्च वृद्धि वाले चरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता आघातों को झेलने की शक्ति तथा स्थिरता रही है। हमने 1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में केवल एक बार भुगतान संतुलन के एक गंभीर संकट को देखा है जो मुख्यतः खाड़ी युद्ध के कारण उत्पन्न हुआ। विश्वसनीय व्यापक आर्थिक संरचना तथा स्थिरीकरण कार्यक्रम इस संकट के समय शुरू किया गया। बाद के वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्व-एशियाई संकट, 1997-98 के रूसी संकट से उत्पन्न आघातों के प्रतिकूल संक्रामक प्रभाव से, पोखरण के विस्फोट के बाद आर्थिक पाबंदी जैसी स्थिति तथा मई-जून 1999 में सीमा पर संघर्ष के संकट से अपने आपको सफलतापूर्वक बचा सकी। इस संदर्भ में देखा जाए तो, हाल के तेल और खाद्यान्नों के आघातों के चलते यह उच्च व्यापक आर्थिक कार्यनिष्पादन, भारतीय अर्थव्यवस्था की ऊर्जस्विता और सशक्तता को प्रदर्शित करता है।

बचत और निवेश

1950 के दशक में भारत में औसत बचत दर 10 प्रतिशत थी; जो 1970 के दशक में 17.5 प्रतिशत तथा 1990 के दशक में और बढ़कर 23.41 प्रतिशत हो गयी। 2005-06 में यह बचत दर 32.4 प्रतिशत थी। हाल के वर्षों में आर्थिक गतिविधि के सुदृढ़ीकरण को सकल देशी निवेश दर से समर्थन मिला जो 2001-02 में सदेउ के 22.9 प्रतिशत के स्तर से बढ़कर 2005-06 में 33.8

प्रतिशत की हो गयी। यहां यह भी ध्यान में रखा जा सकता है कि इस अवधि के दौरान 95 प्रतिशत से ज्यादा के निवेशों का वित्तपोषण घरेलू बचतों द्वारा किया गया।

मुद्रास्फीति

आजादी से लेकर, थोकमूल्य सूचकांक की दृष्टि से औसत आधार पर मुद्रास्फीति की दर 50 वर्षों में केवल 5 वर्षों में ही 15 प्रतिशत से ऊपर रही। 50 वर्षों में से 36 वर्षों में मुद्रास्फीति एक अंकीय रही और अधिकांश अवसरों पर उच्च मुद्रास्फीति खाद्य अथवा तेल के आघातों के कारण रही। मुद्रास्फीति का सहनीय स्तर, विशेषकर देश में लोकतंत्रात्मक दबावों के कारण, अनेक विकासशील देशों की तुलना में निम्न रहा है।

मुद्रास्फीति की दर 1950 के दशक के दौरान रही 1.7 प्रतिशत की वार्षिक औसत दर से तेजी से बढ़कर 1960 के दशक में 6.4 प्रतिशत और 1970 के दशक में 9.0 प्रतिशत तक बढ़ गयी, परंतु 1980 के दशक में यह मामूली-सी गिरकर 8.0 प्रतिशत तक आ गयी। तथापि मुद्रास्फीति की दर 1990-95 के दौरान रही 11.0 प्रतिशत के स्तर से गिरकर 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध (1995-2000) में 5.3 प्रतिशत पर और 2003-07 में और गिरकर 4.9 प्रतिशत पर आ गयी।

अभी हाल ही में 2006-07 के दौरान थोमूसू आधारित मुद्रास्फीति की दर मार्च 2006 के अंत के 4.1 प्रतिशत से बढ़कर जनवरी 2007 के अंत में 6.7 प्रतिशत तक पहुंच गयी जो वर्ष के दौरान सबसे ऊंची दर थी तथा वित्त वर्ष के अंत में (31 मार्च 2007 को) कम होकर 5.7 प्रतिशत पर आने से पूर्व बाद के सप्ताहों में 6.1 से 6.6 प्रतिशत के बीच रही। 19 मई 2007 को थोक मूल्य सूचकांक पर आधारित मुद्रास्फीति की दर 5.1 प्रतिशत थी।

राजकोषीय कार्यनिष्पादन

1980 के दशक के दौरान सदेउ के प्रतिशत के रूप में केंद्र सरकार का औसत सकल राजकोषीय घाटा 6.8 प्रतिशत था, जबकि 1970 के दशक में यह 3.8 प्रतिशत था। रिज़र्व बैंक को बजटीय असंतुलनों को बैंकिंग प्रणाली तथा मौद्रिक निभाव के माध्यम से वित्तपोषित करने को सुविधाजनक बनाना पड़ा। चूंकि ब्याज दरें नियंत्रित थीं, बाजार द्वारा निर्धारित नहीं, अतः लोक ऋण पर ब्याज दरों को कृत्रिम रूप से निम्न रखा गया। 1990 के दशक तक क्योंकि बजटीय असंतुलन अवहनीय हो गये थे, अतः वे समग्र व्यापक आर्थिक असंतुलनों में फैल गये और वित्तीय मंदी की ओर ले गये। अतः सरकार को बजटीय असंतुलनों को नीचे लाने के अलावा स्थिरीकरण और संरचनागत सुधारों के कार्यक्रम चलाने पड़े।

राजकोषीय गतिविधियों के साथ रिज़र्व बैंक ने जो प्रतिक्रिया की उसकी प्रमुख उपलब्धि यह रही कि तदर्थ खजाना बिलों को चरणबद्ध रूप में समाप्त करने और उनके स्थान पर अप्रैल 1997 से अर्थोपाय अग्रिमों की प्रणाली की शुरूआत करने के माध्यम से स्वतः मौद्रीकरण की प्रक्रिया को समाप्त करने के लिए रिज़र्व बैंक और भारत सरकार के बीच एक अनुपूरक करार हुआ। तथापि, रिज़र्व बैंक ने निजी स्थानन द्वारा /बाजार में स्वयं अपने खाते में सरकारी प्रतिभूतियों का निर्गम करके प्राथमिक बाजार में भाग लेना जारी रखा। तथापि बाद में राजकोषीय उत्तरदायित्व तथा बजट प्रबंध (एफआरबीएम) अधिनियम, 2003 के प्रावधानों के अंतर्गत रिज़र्व बैंक अप्रैल 2006 से सरकारी प्रतिभूतियों की प्राथमिक बाजार में नीलामी में भाग नहीं लेता।

भारत सरकार एफआरबीएम अधिनियम, 2003 तथा एफआरबीएम नियमावली, 2004 के अंतर्गत वर्ष 2004-05 से नियम आधारित राजकोषीय समेकन का पथ अपना रही है। इस वैधानिक अधिदेश द्वारा निर्धारित लक्ष्यों का

अंतर्निहित प्रयोजन सदेउ के प्रति सकल राजकोषीय घाटे को 2008-09 तक कम करके तीन प्रतिशत करना है । साथ ही, सदेउ के प्रति राजस्व घाटे का अनुपात 2008-09 तक शून्य प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य रखा गया है ताकि उधार लिये गये संसाधनों का उपयोग केवल पूंजी व्यय को पूरा करने के लिए किया जा सके। लक्ष्यबद्ध राजकोषीय समेकन की प्रगति अब तक संतोषजनक रही है तथा जीएफडी/जीडीपी और आरडी/जीडीपी के अनुपात 2007-08 में घटाकर क्रमशः 3.3 प्रतिशत और 1.5 प्रतिशत तक लाने का बजट अनुमान लगाया गया है। उद्देश्य यह रहा है कि 2008-09 तक एफआरबीएम के लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया जाए तथा 2009-10 में भी उन्हीं स्तरों को बनाये रखा जाए।

बाह्य क्षेत्र

औसत चालू खाता घाटा 1950-51 से सदेउ के लगभग एक प्रतिशत तक रहा है। इस अवधि के दौरान उन 11 वर्षों के अलावा जिसमें, जब चालू खाते ने मामूली-से अधिशेष को, दर्शाया, शेष वर्षों में हमारा मामूली-सा घाटा रहा।

1947 में आजादी के बाद, उच्चतर आयातों तथा पूंजी के बहिर्गम, जो देश के विभाजन से प्रेरित था, के परिणामस्वरूप भुगतान संतुलन में भारी घाटा पैदा हो गया जिसके लिए अर्जित स्टर्लिंग शेष राशियों को कम करना जरूरी हो गया। तथापि, भुगतान संतुलन में दबाव के संकेत दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61) से आगे स्पष्ट दिखाई देने लगे। हालांकि 1966 के अवमूल्यन ने अतिमूल्यांकित विनिमय दर से जुड़ी समस्याओं को उभार कर सामने ला दिया, फिर भी यह भुगतान संतुलन की स्थिति में अपेक्षित सुधार तत्काल नहीं ला सका। विदेशों में कार्यरत कार्मिकों द्वारा भेजे गये विप्रेषण 1970 के दशक में वित्तपोषण की बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करने के नये स्रोत बन गये। तथापि, 1979-80 के दौरान तेल मूल्यों का दूसरा आघात भारत के भुगतान संतुलन पर दबाव लाने वाले दूसरे चरण का कारक बना।

1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में भुगतान संतुलन के संकट के बाद स्थरीकरण और संरचनागत सुधारों के अनेक उपाय किये गये। इस सुधार की प्रक्रिया का चरण-चिह्न रहा है - क्रमिक रूप से सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण जिसने अर्थव्यवस्था के सभी अलग-अलग क्षेत्रों में सुधारों को सावधानीपूर्वक क्रमिकता और चरणबद्धता का स्वरूप प्रदान किया। पूंजी प्रवाहों से जुड़ी उद्वेगशीलता के व्यापक आर्थिक निहितार्थों को पहचानते हुए, भारत ने पूंजी खाते के प्रबंधन की नीति में गैर-ऋण सर्जक आगमों को वरीयता दी। पूंजी प्रवाहों के पदक्रम की पद्धति के सिद्धांत के अनुरूप भारत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के माध्यम से अधिक पूंजी प्रवाहों को आने के लिए प्रयास करता रहा है और 'अपने निवेशक को जानिए' सिद्धांत का कठोरतापूर्वक अनुपालन करते हुए संविभागीय आगमों की गुणवत्ता बढ़ा रहा है। आगे जाकर और उदारीकरण की गति वास्तविक तथा राजकोषीय क्षेत्रों में सुधारों तथा वैश्विक गतिविधियों पर काफी सीमा तक निर्भर होगी।

हाल की अवधि में भारत का बाह्य क्षेत्र ऊर्जस्वित हो गया है क्योंकि उसका चालू खाता घाटा 2001-02 से 2003-04 की अवधि के दौरान मामूली-से अधिशेष वाले वर्षों के अलावा निम्न स्तरों पर बना हुआ है। बाह्य क्षेत्र के संकेतक यह दर्शाते हैं कि गत दशक में निवर्हनीयता का पर्याप्त स्तर प्राप्त कर लिया गया था। सेवाओं के निर्यात और विप्रेषणों में निरंतर वृद्धि अदृश्य खातों में अधिशेष को उच्चतर बनाये रखने के लिए समर्थन देना जारी रखे हुए हैं जिसने व्यापार घाटे के काफी बड़े भाग के वित्तपोषण को समर्थ बनाया। पूंजी के आगम उछाल भरे रहे जिससे विदेशी मुद्रा भंडार निरंतर बढ़ता रहा है। वणिक व्यापार घाटा वर्तमान में सदेउ के 7 प्रतिशत के स्तर पर है तथा चालू खाता घाटा सदेउ के 1.5 प्रतिशत के स्तर पर है ।

जिसके मुख्य कारण हैं - हमारा सेवाओं में ज्ञान और प्रतिस्पर्धागत बेहतर स्थिति में होना तथा विदेशों में कार्यरत भारतीय द्वारा विप्रेषणों का निरंतर सुदृढ़ समर्थन ।

वित्तीय क्षेत्र

आजादी के बाद प्रारंभिक अवधि के दौरान हुए अनुभव यह दर्शाते हैं कि देश की केंद्रीय आयोजना की आवश्यकताओं ने वित्तीय प्रणाली की संस्थागत निर्माण और विकास को प्रेरित किया। यह सुनिश्चित करना आवश्यक समझा गया कि कृषि और उद्योग की क्षेत्रवार ऋण की आवश्यकताओं की आपूर्ति योजना की प्राथमिकताओं के अनुसार पूरा किया जाए। रिज़र्व बैंक को वित्तीय प्रणाली में संस्थागत बुनियादी संरचना के विकास की जिम्मेदारी सौंपी गयी। पहुंच को व्यापक बनाने की दृष्टि से 14 सबसे बड़े वाणिज्यिक बैंकों का जुलाई 1969 में राष्ट्रीयकरण कर दिया गया जो यह सुनिश्चित करने के लिए एक प्रमुख कदम था कि योजना की प्राथमिकताओं के अनुसार वास्तविक उत्पादक क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण का प्रवाह सुनिश्चित किया जाए। पुनः 1980 में 6 और निजी क्षेत्र के बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इस प्रकार बैंकिंग प्रणाली पर सरकारी नियंत्रण की सीमा को और बढ़ा दिया गया।

1991 में सुधारों की अवधि शुरू होने से लेकर भारत में वित्तीय क्षेत्र के प्रति दृष्टिकोण या सोच यह रही है कि वित्तीय दबाव की स्थिति से बाहर निकला जाए और परामर्शी प्रक्रिया के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों को अपनाते हुए प्रणाली को निरंतर उन्नत बनाया जाए। वित्तीय क्षेत्र के सुधार दो चरणों में लागू किये गये। सुधारों के पहले चरण का उद्देश्य था - बाजारोन्मुखी वित्तीय संस्थाओं का निर्माण करना जो परिचालनगत नमनीयता और कार्यमूलक स्वायत्तता के परिवेश में कार्य करें। दूसरे चरण के वित्तीय क्षेत्र के सुधारों का मुख्य केंद्र बिंदु था - वित्तीय सेवाओं के वैश्विक समेकन की ओर बढ़ने के अनुरूप वित्तीय प्रणाली को सुदृढ़ करना।

बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों के दौरान प्रमुख नीतिगत उपायों में शामिल हैं - नकदी प्रारक्षित अनुपात और सांविधिक चलनिधि अनुपात जैसी पूर्वक्रय करने की संविधिक अपेक्षाओं में चरणबद्ध रूप से कमी लाना तथा कुछ चुनिंदा घटकों को छोड़कर जमा और उधार की ब्याज दरों को अपविनियमित करना। बैंकिंग संस्थाओं के स्वामित्व का विशाखीकरण एक अन्य विशेषता है जिसने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में निजी धारिता को समर्थ बनाया जो स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्धीकरण तथा सरकार के स्वामित्व में कमी लाकर संभव हो सका। बैंकों के शेयरों की बेहतर बाजार कीमत होने के कारण सरकार द्वारा बैंकों में पूंजी का निवेश सरकार के लिए काफी लाभ का सौदा बन गया। निजी क्षेत्र के बैंकों में निर्धारित मार्गदर्शी निदेशों के अंतर्गत 74 प्रतिशत तक के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति है। अब नये-नये बैंक हैं, नयी-नयी लिखतें हैं, और इन सबके साथ-साथ नयी-नयी चुनौतियां भी हैं । बाजारी प्रक्रिया तंत्र के माध्यम से कार्य करते हुए बैंकों को अपने संसाधनों के आबंटन में पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। रिज़र्व बैंक का यह प्रयास रहा है कि त्वरित और प्रभावी पर्यवेक्षण के साथ एक समर्थनकारी विनियामक ढांचा बनाया जाए तथा कानूनी, प्रौद्योगिकीगत और संस्थागत बुनियादी संरचना का विकास किया जाए।

सरकारी, निजी क्षेत्र तथा विदेशी बैंकों के सह-अस्तित्व ने बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा पैदा कर दी है जिससे ग्राहक-सेवा तथा दक्षता में काफी सुधार हुआ है। कुल आस्तियों में निजी और विदेशी बैंकों की आस्तियों का अंश मार्च 2005 के अंत के 24.7 प्रतिशत तथा सुधारों के प्रारंभ के 10.0 प्रतिशत से कम से बढ़कर मार्च 2006 के अंत में 27.6 प्रतिशत हो गया है।

वर्तमान में, सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक 9 प्रतिशत की न्यूनतम पूंजी-पर्याप्तता अनुपात (सीआरएआर) का अनुपालन कर रहे हैं। सभी वाणिज्यिक

बैंकों के लिए समग्र सीआरएआर मार्च 2006 के अंत में 12.4 प्रतिशत बैठता है। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की बकाया सकल गैर-निष्पादक आस्तियां 2002-03 में अग्रिमों के 8.80 प्रतिशत से गिरकर 2005-06 में 3.30 प्रतिशत रह गयी हैं। भारतीय अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की कुल आस्तियों के प्रति परिचालनगत खर्चों का अनुपात 2002-03 के 2.24 प्रतिशत से गिरकर 2005-06 में 2.11 प्रतिशत रह गया है।

चूंकि वित्तीय बाजारों का विकास एक सतत प्रक्रिया है, वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटकों को और भी गहन और व्यापक बनाने के लिए पहलों को लगातार जारी रखना होगा। जैसाकि आर्थिक वृद्धि और वित्तीय स्थिरता के संदर्भ में मूल्य स्थिरता को बनाये रखने का लक्ष्य बना रहेगा, प्रयास यह रहेगा कि वित्तीय बाजारों के अपविनियमन तथा उदारीकरण का वास्तविक तथा राजकोषीय क्षेत्रों में घरेलू गतिविधियों तथा अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संरचना में वैश्विक गतिविधियों के साथ तालमेल बैठाना होगा।

II. संभावनाएं

अल्पावधिक संभावनाएं

2006-07 के दौरान भारत के व्यापक आर्थिक कार्य-निष्पादन की उल्लेखनीय विशेषता वृद्धि में आयी मजबूत तेजी रही है। उद्योग और सेवाओं ने जो अर्थव्यवस्था का 80 प्रतिशत से अधिक का अंश बनती है, दो अंकीय वृद्धि दर्ज की। जहां अर्थव्यवस्था में संरचनागत परिवर्तन होने के प्रमाण दिख रहे हैं, इस बात के भी प्रमाण हैं कि 2006-07 में मांग में आये तेज दबाव में एक चक्रीय पटल काम करेगा। जहां तक संरचनागत परिवर्तन का संबंध है, सर्वप्रथम, हाल ही की वृद्धि की गति निवेशों की दर में आये तेज उछाल से प्रेरित है, जो इसके बदले में, सकल घरेलू बचतों की दरों में उल्लेखनीय वृद्धि से समर्थित हैं। यह उल्लेखनीय सुधार कंपनी बचतों में विशिष्ट वृद्धि तथा 2003-04 के बाद से सार्वजनिक क्षेत्र में आये अधिव्यय की स्थिति का परिणाम है। जहां पारिवारिक बचतें सकल घरेलू बचतों का मुख्य आधार बनी रहीं। दूसरी, विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारत की सम्बद्धता अर्थव्यवस्था के बढ़ते खुलेपन के साथ-साथ मजबूत होती जा रही है। तीसरी, इस बात के प्रमाण हैं कि कुल उपादान उत्पादकता तथा पूंजी के उपयोग की दक्षता में सुधार हुआ है।

इस हाल की वृद्धि के अनुभवों में चक्रीय कारक भी निहित हैं। पहला, तेजी से बढ़ी हुई वैश्विक सकल देशी उत्पाद, जो सुदृढ़ विस्तार के चार वर्षों तक लगातार बनी हुई है, भारत में उच्च वृद्धि की समर्थक रही है। दूसरा, बैंक ऋणों और मुद्रा आपूर्ति में लगातार बनी रही उच्च वृद्धि, तेल से इतर आयातों में आयी वृद्धि तथा हाल के वर्षों में व्यापार घाटे के व्यापक होने के साथ-साथ समग्र मांग पर ऊर्ध्वमुखी दबाव का संकेत करती है। तीसरा, चक्रीय शक्तियां, विनिर्माणकर्ताओं के मूल्यों में तेज वृद्धि का, कंपनियों के बीच मूल्य निर्धारण की शक्तियों के पुनः उभरने, कुछ क्षेत्रों में वेतन संबंधी दबावों के संकेतों ने क्षमता के उपयोग में दबाव तथा बढ़े हुए आस्तिमूल्य भी इसके प्रमाण हैं।

यह भी महत्वपूर्ण है कि भारत के हाल के व्यापक आर्थिक कार्य-निष्पादन का आकलन बढ़ते हुए जोखिमों के जमावड़े के प्रति किया जाए जोकि हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित कर सकते हैं। पहला, उद्योग और सेवाओं में देखी गयी उच्च वृद्धि जो कुछ सीमा तक कृषि की वृद्धि में आयी बाधा से रुक गयी है। कृषि की वृद्धि में काफी गिरावट और उद्वेगशीलता आ गयी है। अब यह व्यापक रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि कृषि का कार्य-निष्पादन न केवल उत्पादन तथा रोजगार के लिए, बल्कि विशेषकर मूल्य स्थिरता के लिए भी महत्वपूर्ण है। जहां 60 प्रतिशत से ज्यादा कामगार (श्रमिक) कृषि पर निर्भर हैं, वहीं यह क्षेत्र सदेउ में 20 प्रतिशत का योगदान करता है।

दूसरा, कृषि के कार्य-निष्पादन में कमी आने के साथ-साथ भौतिक बुनियादी संरचना में भी व्यापक अंतराल उभरकर आये हैं। बुनियादी संरचना के लिए मांग में तीव्र वृद्धि की तुलना में वर्तमान निवेश परिवेश में उसकी आपूर्ति में कमी के कारण बिजली के उत्पादन, सड़कों, बंदरगाहों और प्रमुख एयरपोर्टों के उपयोग में क्षमता की कमी खल रही है।

तीसरा, प्राथमिक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि के कारण वर्ष के दौरान मुद्रास्फीति के बढ़ने की दृष्टि से, 2006-07 में घरेलू गतिविधियां चिंता का कारण हो गयी हैं।

मौद्रिक और वित्तीय स्थितियां इन मांग-आपूर्ति के अंतरालों को दर्शा रही हैं तथा सकल खर्चे में दीर्घावधिक रूप से बढ़ने की शुरुआत हो चुकी है। वास्तविक क्षेत्र में वृद्धि में आयी तेज गति को वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिये गये गैर-खाद्यान्न ऋणों के तेज वृद्धि पथ पर ऊर्ध्वमुखी बदलाव से देखा जा सकता है। गैर-खाद्यान्न ऋणों में 2003-04 से 2006-07 की अवधि के दौरान 29.8 प्रतिशत का विस्तार भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में अभूतपूर्व रहा है। हाल की अवधि में इसमें कुछ गिरावट देखी गयी है जो 11 मई 2007 को गैर-खाद्यान्न ऋण में 27.2 प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी, जबकि पिछले वर्ष इसी अवधि में यह 32.3 प्रतिशत की थी।

बढ़ते हुए पूंजी प्रवाहों के अनुरूप रिज़र्व मुद्रा की वृद्धि हाल की अवधि में उच्चतर रही है जो 2003-07 की अवधि के दौरान औसतन 17.8 प्रतिशत रही है। रिज़र्व मुद्रा की वृद्धि की दर वार्षिक आधार पर 18 मई 2007 को 23.3 प्रतिशत थी (एक साल पहले 20 प्रतिशत)।

इसी प्रकार हाल की अवधि में ऋण में उच्च वृद्धि ने मुद्रा आपूर्ति की वृद्धि को 2003-07 के दौरान औसतन 16.7 प्रतिशत पर उच्च रहने के लिए प्रेरित किया है। 2006-07 के दौरान मुद्रा आपूर्ति 20.7 प्रतिशत की दर से बढ़ी। 11 मई 2007 को वर्ष दर वर्ष आधार पर मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि 20.2 प्रतिशत (एक वर्ष पहले 18.2 प्रतिशत के मुकाबले) थी।

विश्व भर में मुद्रा आपूर्ति में उच्च विस्तार तथा 2005-07 की मुद्रा बकाया को ध्यान में रखते हुए, यह महत्वपूर्ण है कि 2007-08 में मुद्रा विस्तार को वृद्धि और मुद्रास्फीति पर दृष्टिकोण के अनुरूप लगभग 17.0 - 17.5 प्रतिशत के दायरे में रखा जाए। वर्ष 2007-08 के लिए वार्षिक नीति संबंधी वक्तव्य में भी सकल जमाराशियों में वृद्धि को 2007-08 में लगभग रु.4,900 बिलियन की वृद्धि के आसपास रखा गया है तथा गैर-खाद्यान ऋण 2007-08 में क्रमिक कमी के साथ गिरकर 24.0-25.0 प्रतिशत रह गया।

भारत में मौद्रिक नीति को अन्य स्रोतों से उभरती चुनौतियों के भार से भी संघर्ष करना होगा। पहला, यह मान लिया गया है कि मौद्रिक नीति को उच्च स्तर के लोक ऋण तथा राजकोषीय घाटे से भी जूझना है । जहां राज्यों की राजकोषीय स्थिति में हाल ही में हुए कुछ सुधार तथा केंद्र के वित्तों में उल्लेखनीय समेकन ने कुछ सीमा तक स्थिति में सुधार दर्शाया है, वहीं जैसे-जैसे हम वित्तीय क्षेत्र तथा पूंजी खाते में और उदारीकरण लाने की ओर बढ़ते हैं, राजकोषीय स्थिति को और सुदृढ़ करने की जरूरत है। दूसरे, हाल की अवधि में विदेशी मुद्रा के आगमों की दीर्घकालीन शक्ति ने मौद्रिक नीति के संचालन को और जटिल बना दिया है क्योंकि ऐसे आगम चलनिधि में विस्तार लाकर मौद्रिक नीति को कठोर बनाने की दक्षता को काफी सीमा तक घटा सकते हैं। तीसरे, भारत में अधिकांश जनसंख्या की जीविका के स्तर तीव्र वित्तीय उतारचढ़ावों को झेलने में अपर्याप्त हैं। जो वास्तविक गतिविधि को प्रभावित करते हैं। तदनुसार, मौद्रिक नीति को पूंजी प्रवाहों में आने वाले अचानक बदलावों से जुड़े वित्तीय बाजारों की उद्वेगशीलता से अर्थव्यवस्था के इन घटकों के संरक्षण

का भार भी वहन करना पड़ता है। चौथे, एक ऐसी स्थिति, जिसमें समग्र आपूर्ति घरेलू मांग की लोच से कम हैं तो वह भी मौद्रिक नीति पर अतिरिक्त भार है। जहाँ खुले व्यापार ने कई अर्थव्यवस्थाओं की आपूर्ति की संभाव्यताओं को बढ़ा दिया है, वहीं यह कुछ आपूर्ति लोचों पर कोई उल्लेखनीय अल्पावधिक हितकारी प्रभाव रखता प्रतीत नहीं होता है।

भारत में मौद्रिक नीति का परिचालन भी मौद्रिक नीति के संकेतों को अर्थव्यवस्था के लिए सम्प्रेषित करने में आने वाली कुछ अनिश्चितताओं से बाधित है। पहली, 1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों से क्रमिक अपविनियमन किये जाने के बावजूद,ब्याज दरों की कुछ श्रेणियां नियंत्रित बनी हुई हैं, जो ब्याज दरों की संरचना पर मौद्रिक नीति के प्रभाव को अप्रभावी बनाये हुए हैं। दूसरी, सरकारी नीति की व्यवस्था द्वारा उपलब्ध कराये गये प्रोत्साहनों द्वारा बाह्य क्षेत्र का प्रबंधन पूंजी प्रवाहों के कुछ घटकों के लिए जटिल बना दिया गया है। इस प्रकार घरेलू अर्थव्यवस्था में कुछ चुनिंदा क्षेत्रों को पूंजी के प्रवाह की मात्रा और दिशा ने अनिश्चितताएं खड़ी कर दी हैं क्योंकि वैश्विक और घरेलू परिवेश अनिवार्य रूप से आर्थिक बुनियादी तत्वों या मौद्रिक नीति की व्यवस्था से जुड़ा नहीं है। तीसरी, मौद्रिक नीति के परिचालनों को मुख्यतया बैंकिंग प्रणाली के सार्वजनिक क्षेत्र के स्वामित्व की ओर उन्मुख होना होगा, क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक न केवल मौद्रिक नीति के संकेतकों को सम्प्रेषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, बल्कि अन्य सार्वजनिक नीति के विषयों में भी।

समग्रतः, रिज़र्व बैंक ने 2007-08 में वास्तविक सकल देशी उत्पाद में वृद्धि लगभग 8.5 प्रतिशत होने का पूर्वानुमान लगाया है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय तेल के मूल्यों में और अधिक वृद्धि के न होने तथा घरेलू और बाह्य आघातों के न आने की परिकल्पना की गयी है। वर्ष 2007-08 के लिए रिज़र्व बैंक की नीति का प्रयास यह होगा कि मुद्रास्फीति को 5.0 के लगभग सीमित रखा जाए। मध्यम अवधि में, भारत की वैश्विक अर्थव्यवस्था और समाज की वरीयताओं के साथ भारत के बढ़ते हुए समेकन को देखते हुए संकल्पना यह की गयी है कि आगे मौद्रिक नीति और मुद्रास्फीति की अपेक्षाओं को 4.0 - 4.5 प्रतिशत के दायरे में बांध कर रखा जाए।

मध्यम-अवधि की संभावनाएं

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-08 से 2011-12) के दृष्टिकोण पत्र में दसवीं पंचवर्षीय योजना के लिए लक्ष्यित 8.0 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि की तुलना में 9 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है। वृद्धि के लिए यह आकांक्षा, दसवीं पंचवर्षीय योजना में 27.8 प्रतिशत के निवेश की तुलना में 11वीं पंचवर्षीय योजना अवधि में कहीं अधिक 35.1 प्रतिशत की अपेक्षा होगी। जहां इस निवेश में वृद्धि का लगभग आधा भाग फार्म (कृषि), छोटे और मझोले उद्यमियों तथा कम्पनी क्षेत्र में निजी निवेश में आने की संभावना है, और शेष सार्वजनिक क्षेत्र से उत्पन्न होगा जिसमें बुनियादी संरचना क्षेत्र पर मुख्य ध्यान होगा। उच्चतर स्तर के निवेशों का वित्तपोषण बढ़ी हुई घरेलू बचतों तथा बढ़ी हुई विदेशी बचतों के कुछ सहयोग से वित्तपोषित किये जाने का प्रस्ताव है। घरेलू बचतों में अपेक्षित वृद्धि का काफी बड़ा भाग सरकारी बचतों में किये जाने वाले सुधार से आने की आशा है। पारिवारिक बचतें तथा निजी कम्पनी क्षेत्र की बचतें भी इस संबंध में मुख्य भूमिका निभा सकती हैं।

यह मानते हुए कि वृद्धि के लाभों को नीचे तक पहुंचाने की जरूरत है, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में अधिक तेज, अधिक व्यापक आधार वाली तथा समावेशनपरक वृद्धि पर आधारित एक नये लक्ष्य को साकार करने में नीति की पुनर्संरचना करने का अवसर प्रदान करने की संभावना है। इस संदर्भ में कृषि सकल

देशी उत्पाद वृद्धि को दुगुना करके 4 प्रतिशत तक लाना विशेष महत्वपूर्ण है। दृष्टिकोण पत्र यह सुझाता है कि यह गैर-कृषि क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में तेज वृद्धि को प्रौन्नत करने की नीतियों के सहयोग से होना चाहिए ताकि 11वीं पंचवर्षीय योजना में 70 मिलियन रोजगार निर्मित किये जा सकें।

अभी हाल ही में 29 मई 2007 को हमारे माननीय प्रधान मंत्री ने 11वीं पंचवर्षीय योजना में कृषि की वृद्धि दर को दुगना करके 4.0 तक लाने की घोषणा की थी। भारत सरकार राज्यों द्वारा शुरू की गयी नयी कृषि संबंधी पहलों को 250 बिलि.रु. मुहैय्या करायेगी। खाद्य उत्पादों में बढ़ते हुए मूल्यों को रोकने के लिए तथा यह सुनिश्चित करने के लिए अगले तीन वर्षों में उनकी उपलब्धता में उल्लेखनीय परिवर्तन आयें एक समयबद्ध खाद्य सुरक्षा मिशन की भी घोषणा की गयी।

यदि ये उद्देश्य प्राप्त कर लिए जाते हैं तो गरीबी में रहने वाले लोगों का प्रतिशत इस योजना अवधि की समाप्ति तक 10 प्रतिशत बिंदुओं तक घटाया जा सकेगा। नीति संबंधी सुधारों तथा निगरानी योग्य लक्ष्यों को विशेषकर, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिलाओं, बच्चों, बुनियादी संरचना पर जैसाकि दृष्टिकोण पत्र में उल्लेख किया गया है जब प्राप्त कर लिया जायेगा तब ये जनता के काफी बड़े भाग को भारी मात्रा में लाभान्वित करेंगे। इससे भारतीय वृद्धि की प्रक्रिया को अधिक समावेशनपरक और स्थायी बनाने में मदद मिलेगी।

11वीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण पत्र यह सुझाता है कि औद्योगिक क्षेत्र तथा विनिर्माण क्षेत्रों के लिए वृद्धि के लक्ष्यों को इस योजना अवधि में क्रमशः 10 प्रतिशत और 12 प्रतिशत पर रखा जा सकता है। यह इस धारणा पर आधारित है कि भारत में भी विश्व के लिए अनुकूल विनिर्माण केंद्र के रूप में उभरने की क्षमता है विशेषकर, कुछ विनिर्माण गतिविधियों के संबंध में, जिनमें उद्यमिता की गतिशीलता तथा लागत की प्रतिस्पर्धात्मकता विद्यमान है।

देश में सेवा क्षेत्र को व्यापक रूप में दक्ष (कुशल) श्रमिकों की उपलब्धता से लाभ मिला है और ऐसी आशा है कि यह अर्थव्यवस्था को आगे ले जाना जारी रखेगी जिसमें इसका संबंध अच्छी प्रकार का कार्य-निष्पादन करने वाले औद्योगिक क्षेत्र से लेकर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तक फैला हुआ है। यह दृष्टिकोण पत्र सेवा क्षेत्र पर विशेष ध्यान केंद्रित करता है, ताकि रोजगार सृजन तथा वृद्धि में इसकी सक्षमताओं को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

सरकार की ओर से यह वचनबद्धता है कि वह राजकोषीय स्थिति को ठीक करने तथा उसके समेकन के लिए प्रयास करेगी। केन्द्र सरकार के लिए आगे का रास्ता है- एफ आर बी एम लक्ष्यों का प्राप्त करना, विशेषकर, राजस्व घाटे को 2008-09 तक समाप्त करना। इस लक्ष्य के लिए अनुकूल कारक हैं- कर-सदेउ अनुपात में उछाल तथा 2003-04 के बाद से सार्वजनिक क्षेत्र के अधिव्यय में कमी।

जनसंख्यागत लाभांश के लाभों को प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक नीति का शिक्षा और स्वास्थ्य की दृष्टि से तथा रोजगार सृजन में, जोकि 'युवाओं की संभावित उभरती संख्या' को उत्पादक कार्यों में खपाने में सहायता कर सकती है, गुणवत्तापूर्ण सामाजिक बुनियादी संरचना में महत्वपूर्ण स्थान है।

इस दृष्टिकोण पत्र में और वित्तीय नवोन्मेषन पर जोर दिया गया है, विशेषकर, बीमा और पेंशन क्षेत्रों में, जोकि बुनियादी क्षेत्र की दीर्घावधिक वित्तीय अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए अच्छा स्रोत माने जाते हैं। इसमें अपनाया जाने वाला नीतिगत दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करेगा कि बैंकिंग कारोबार तक और अधिक लोगों की पहुंच संभव हो सके तथा उच्च वृद्धि के वर्तमान परिदृश्य में भी बैंक को लाभों

से वंचित लोगों को उपयोगी रूप में उधार दे सकें तथा अनौपचारिक ऋण घटक तक सफलतापूर्वक फैल सकें।

II. नीति के संचालन में चुनिंदा मुद्दे

बहु-उद्देश्य

भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 की उद्देशिका में रिज़र्व बैंक के उद्देश्यों को इस प्रकार बताया गया है, ''भारत में मौद्रिक स्थिरता को सुरक्षित करने तथा आम तौर पर देश की करेंसी और ऋण प्रणाली को इसके हित में परिचालित करने के लिए बैंक नोटों के निर्गम को विनियमित करना तथा प्रारक्षित निधियां रखना।'' हालांकि मूल्य स्थिरता के लिए कोई निश्चित अधिदेश नहीं है, जैसा कि अनेक देशों में वर्तमान में प्रवृत्ति है, भारत में मौद्रिक नीति के उद्देश्य मूल्य स्थिरता को बनाये रखने तथा अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों के लिए पर्याप्त ऋण का प्रवाह सुनिश्चित करने के रूप में विकसित हुए हैं। सारांश में, मौद्रिक नीति का उद्देश्य मूल्य स्थिरता तथा आर्थिक वृद्धि के बीच एक न्यायोचित संतुलन बनाये रखने का है। मूल्य-स्थिरता और आर्थिक वृद्धि के बीच तुलनात्मक बल समय विशेष पर विद्यमान परिस्थितियों द्वारा निर्धारित किया जाता है तथा उसकी घोषणा समय-समय पर रिज़र्व बैंक द्वारा नीति संबंधी वक्तव्यों में की जाती है। वित्तीय स्थिरता ने जिसे मौद्रिक स्थिरता के रूप में शामिल किया गया है, 1990 के दशक के उत्तरार्ध से महत्ता प्राप्त कर ली है।

रिज़र्व बैंक भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के लिए ऋण प्रबंधक तथा बैंकर के कार्य भी करता है। बैंकों और गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के विनियमन और पर्यवेक्षण का कार्य भी रिज़र्व बैंक को दिया गया है। बाह्य क्षेत्र के चालू और पूंजी खाते के लेनदेनों के प्रबंधन के अलावा, मुद्रा सरकारी प्रतिभूति और विदेशी मुद्रा बाजारों के विकास और विनियमन के कार्य भी रिज़र्व बैंक के हैं। भुगतान प्रणाली भी रिज़र्व बैंक के अधिकार क्षेत्र में आती है।

मुद्रास्फीति का मापन और लक्ष्यबद्धीकरण

एक उपयुक्त मुद्रास्फीति संकेतक को घटक मदों के मूल्यों के बदलावों का सटीक रूप में दर्शाना चाहिए तथा शीर्षस्थ मुद्रास्फीति की कुछ समझ प्रदान करनी चाहिए। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआइ) को आम तौर पर मौद्रिक नीति के लिए मुद्रास्फीति के संकेतक के रूप में वरीयता दी जाती है। अमीरों और गरीबों के बीच ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच, यहां तक कि भारत के अलग-अलग क्षेत्रों के बीच काफी अलग-अलग उपभोक्ता बास्केट होने के कारण सकल सीपीआइ सूचकांक कम प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए उत्पादक मूल्यों के एक माप को जो थोक मूल्य सूचकांक से मिलता-जुलता है, वर्तमान में सारे देश में अधिक प्रतिनिधित्वपरक तथा परिचित माना जाता है। तथापि उपभोक्ता पेटी (बास्केट) में सेवाओं की बढ़ती महत्ता को देखते हुए थोक मूल्य सूचकांक को कम प्रतिनिधिकारक बना देता है। ऐसे भी अवसर आये हैं जब थोक मूल्य सूचकांक और उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के बीच अपवर्तन सामान्य से ज्यादा हो गया है। इन मुद्दों को ध्यान में रखते हुए, हम सभी सीपीआइ संकेतकों की निगरानी तथा उनका प्रसारण करते हैं तथा मौद्रिक नीति के निर्माण में इसे प्रासंगिक सूचना के रूप में उपयोग में लाते हैं। इसके समानान्तर, हम एक समरसतापूर्ण उपभोक्ता मूल्य सूचकांक बनाने के लिए तकनीकी कार्य कर रहे हैं तथा इस संबंध में सरकार के साथ परामर्श चल रहा है।

यह अधिकाधिक रूप में स्वीकार कर लिया गया है कि मौद्रिक नीति को मुद्रास्फीतिगत अपेक्षाओं के प्रबंधन से भी जुड़ा होना चाहिए। मुद्रास्फीति के संकेतकों के समूह में किसी परिवर्ती को शामिल करने के लिए मार्गदर्शी मानदंड यह होगा कि उसमें भावी मुद्रास्फीति के बारे में कितनी सूचनापरक विषयवस्तु निहित है। अब हम सक्रिय रूप से

भावी मुद्रास्फीति के लिए वास्तविक क्षेत्र के संकेतकों से जुड़ी सूचना को एकत्र करने में लगे हुए हैं - जैसे कि प्रवृत्ति/सक्षमता के आसपास उत्पाद की परिवर्तिता, क्षमता का उपयोग, मालसूची, कंपनी कार्य-निष्पादन, औद्योगिक/निवेश की प्रत्याशाएं तथा सकल मांग के अन्य संकेतक।

भारत में, हमने अनेक कारणों से मुद्रास्फीति के एक स्पष्ट लक्ष्यबद्ध ढांचे को अपनाने का पक्ष नहीं लिया है। पहला, भारत में मौद्रिक नीति के वृद्धि और मूल्यस्थिरता के दोहरे लक्ष्य हैं, परंतु इन दोनों के बीच तुलनात्मक बल परिस्थितियों के आधार पर घटता-बढ़ता रहता है। दूसरा, हमारे यहां संतुलित मुद्रास्फीति का रिकार्ड रहा है, जहां द्विअंकीय मुद्रास्फीति अपवादस्वरूप ही रही है, और व्यापक रूप में सामाजिक दृष्टि से अस्वीकार्य है। तीसरा, मुद्रास्फीति को लक्ष्यबद्ध करने की प्रणाली को अपनाने के लिए दक्ष द्वितीय बाजारों के परिचालन के माध्यम से संचालित होनेवाली संप्रेषण प्रक्रिया-तंत्र की उपस्थिति तथा ब्याज दरों में विकृतियों की अनुपस्थिति की जरूरत होती है। भारत में यद्यपि मुद्रा बाजार, सरकारी ऋण तथा विदेशी मुद्रा बाजार वस्तुतः हाल के वर्षों में विकसित हुए हैं, परंतु अभी भी उन्हें कुछ और रास्ता तय करना है, जबकि कंपनी ऋण बाजार को अभी विकसित होना बाकी है। हालांकि ब्याज दर अपविनियमन को पहले ही पूरा कर लिया गया है, परंतु कुछ नियंत्रित ब्याज दरें अभी भी कायम हैं। चौथा, भारत जैसी बड़ी अर्थव्यवस्था में, अनेक क्षेत्रीय अंतर विद्यमान हैं तथा सभी क्षेत्रों में उपादान तथा उत्पाद बाजारों में अपूर्णताएं अभी भी बनी हुई हैं। अतः सर्व स्वीकार्य मुद्रास्फीति के उपायों का विकल्प भी कठिन है। पांचवाँ, मुद्रास्फीतिगत दबाव अकसर महत्वपूर्ण आपूर्तिगत आघातों से उभरते हैं जोकि तेल मूल्यों के अलावा कृषि पर मानसून के प्रभाव से सम्बद्ध होते हैं।

हमारे यहां कोर मुद्रास्फीति की संकल्पना नहीं है, परंतु विश्लेषण तथा उल्लेख करने के प्रयोजनों के लिए हम ईंधन और खाद्य मूल्यों के आघातों के प्रभाव को पहचानते हैं। ये दो मदें अकसर बाह्य और घरेलू दोनों प्रकार के आघातों से प्रभावित होती हैं। इन दोनों मदों का बास्केट में काफी बड़ा भारांक भी है, विशेषकर खपत की बास्केट में। यह भी कठिन है कि पहले से ही आघातों और स्थायी घटकों के बीच अंतर कर लिया जाए।

तथापि, रिज़र्व बैंक में हम तीन वर्षों से इनके उल्लेखनीय प्रभाव तथा 5 प्रतिशत के आसपास मुद्रास्फीति की सहनीय सीमा का उल्लेख करते आ रहे हैं। तब से यह मुद्रास्फीतिगत अपेक्षाओं में जुड़ गया है जैसाकि जब भी थोक मूल्य सूचकांक 5 प्रतिशत से अधिक हो गया है, तो आनेवाली प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं में इसे देखा गया है। रिज़र्व बैंक की 2007-08 की वार्षिक नीति में हमने मध्यावधि में 4.0 से 4.5 प्रतिशत की औपचारिक मुद्रास्फीति के आदेश को स्वतः अपने ऊपर लाद लिया था। लक्ष्य यह है कि भारत में मुद्रास्फीतिगत अपेक्षाओं को रोक कर रखा जाए ताकि उन्हें जितनी भी जल्दी संभव हो सके वैश्विक स्तरों के अनुरूप बनाया जा सके, जिससे वह वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ सुचारू रूप से समन्वित हो सके।

विवेकसम्मत उपायों का उपयोग

मौद्रिक नीति के संचालन में वित्तीय स्थिरता को बनाये रखना मुख्य चिंता के रूप में उभरी है। रिज़र्व बैंक ने वित्तीय स्थिरता को प्राप्त करने के अपने प्रयासों में दो पथीय दृष्टिकोण अपनाया है। पहला, मुद्रास्फीति को निम्न करके मौद्रिक स्थिरता को सुनिश्चित करना, इसने मुद्रास्फीतिगत प्रत्याशाओं को निम्न कर दिया है और उसके द्वारा वित्तीय स्थिरता को प्रोत्साहित किया जा रहा है। दूसरा, रिज़र्व बैंक ने वित्तीय संस्थाओं, वित्तीय बाजारों और वित्तीय बुनियादी संरचना की स्थिरता को प्रौन्नत करने के लिए एक बहु-आयामी रणनीति लागू की है। स्थिर आर्थिक व्यवस्था जिसके साथ-साथ वित्तीय प्रणाली की

व्यापक वित्तीय निगरानी ने बाजार के खिलाड़ियों को एक व्यवस्थित रूप में अपने कारोबार करने का विश्वास प्रदान किया है।

भारत में, बढ़ती हुई आर्थिक गतिविधियों ने खाद्येतर ऋण की वृद्धि को 2004-05 से 30 प्रतिशत से भी ऊपर बढ़ा दिया है। वास्तविक क्षेत्र, तथा उपभोक्ता ऋण जैसे क्षेत्रों में उच्च ऋण वृद्धि देखी गयी है, जो आस्ति-मूल्यों में तीव्र वृद्धि तथा ऋण की गुणवत्ता में तनाव और दबाव ला रही है। ऐसे क्षेत्रों के लिए जहां मूल्यों में भारी वृद्धि हुई है मौद्रिक नीतिगत उपायों के अनुपूरक के रूप में नीति संबंधी प्रतिसाद उच्चतर प्रावधानीकरण तथा उच्चतर जोखिम भारांक देने के रूप में रहा है।

एक अधिक समसामयिक, व्यावहारिक दृष्टिकोण के लिए, जो नीतिगत प्रतिसाद के रूप में विवेकसम्मत विनियमन के प्रयोग की वकालत करता है, अधिकाधिक समर्थन बढ़ रहा है, जिसमें वित्तीय स्थिरता के अनुसरण में अत्यधिक ऋण वृद्धि को निरुत्साहित करना होगा।

एकल बनाम बहु विनियामक

भारत में जैसा कि अन्य कई देशों में होता है, वित्तीय क्षेत्र में विभिन्न संस्थाओं और बाजार सहभागियों के विनियमन और पर्यवेक्षण का कार्य अनेक एजेंसियों को सौंपा गया है। भारतीय रिज़र्व बैंक बैंककारी विनियमन अधिनियम 1949 तथा भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के प्रावधानों के अंतर्गत अपने विभिन्न विभागों के माध्यम से वित्तीय प्रणाली के अधिकांश भाग को विनियमित और पर्यवेक्षित करता है। इसके पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र में वाणिज्यिक बैंक, गैर-वित्तीय कंपनियां (एनबीएफसी), शहरी सहकारी बैंक (यूसीबी) तथा कुछ अखिल भारतीय संस्थाएं (एआरएफआईज) शामिल हैं। इसके प्रतिफलस्वरूप कुछ अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं वित्तीय क्षेत्र में अन्य संस्थाओं का विनियमन और पर्यवेक्षण करती हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (आरआरबीज) तथा मध्यवर्ती एवं राज्य सहकारी बैंकों का पर्यवेक्षण राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) के माध्यम से, राज्य वित्त निगमों (एसएफसीज) का भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आइडीबीआइ) के माध्यम से (अब सिडबी को अंतरित) तथा आवास वित्त कंपनियां राष्ट्रीय आवास बैंक (एनएचबी) के माध्यम से रिज़र्व बैंक द्वारा पर्यवेक्षित किये जाते हैं।

1992 से, भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) पूंजी बाजार को विनियमित करता है तथा अन्य अनेक संस्थाओं जैसे स्टॉक एक्सचेंजों, पारस्परिक निधियों, आस्ति प्रबंध कंपनियों, प्रतिभूति व्यापारियों तथा ब्रोकरों, मर्चेंट बैंकरों तथा साख दर निर्धारक एजेंसियों का पर्यवेक्षण करता है। सेबी वेंचर केपिटल फंडों का भी विनियमन करता है। बीमा क्षेत्र की संस्थाएं 1999 से बीमा विनियामक तथा विकास प्राधिकरण (इर्डा) द्वारा विनियमित की जाती हैं। बैंकों को बीमा गतिविधि में संयुक्त उद्यमों, ईक्विटी सहभागिता, तथा एजेंसी प्रकार की व्यवस्थाओं के माध्यम से सम्बद्ध होने की अनुमति दी गई है। पेंशन निधियों के लिए एक अग्रणी विनियामक निकाय अर्थात् अंतरिम पेंशन फंड विनियामक तथा विकास प्राधिकरण (पीएफआरडीए) 2004 में स्थापित किया गया है। कंपनी कार्य मंत्रालय (एमसीए) गैर-बैंकिंग गैर-वित्तीय कंपनियां तथा एनबीएफसी की जमा संग्रहण गतिविधियों को विनियमित करता है।

भारत में अनेक प्रक्रिया-तंत्र हैं जिनके द्वारा वित्तीय प्रणाली के विनियामकों के बीच समन्वय को सुनिश्चित किया जाता है। पहला, विनियामकों के बीच नियमित आधार पर और कभी-कभी विशेष अनुरोध पर सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जाता है। दूसरा, वित्तीय और पूंजी बाजारों पर एक उच्चस्तरीय समन्वय समिति जिसमें गवर्नर, रिज़र्व बैंक अध्यक्ष हैं तथा वित्त सचिव, अध्यक्ष, सेबी,

अध्यक्ष इर्डा और अभी हाल ही में पीएफआरडीए के अध्यक्ष इसके सहयोगी सदस्य हैं। इस उच्चस्तरीय समिति ने एक स्थायी कार्यदल का गठन किया है जो वित्त मंत्रालय, भारतीय रिज़र्व बैंक तथा सेबी के बीच इसके परिचालन स्तर पर समन्वय करने में समर्थ बना सके तथा समिति को इसकी चर्चाओं में सहायता कर सके। अंतिम, जहाँ रिज़र्व बैंक के उप गवर्नर के साथ वित्त मंत्रालय और कंपनी कार्य मंत्रालय के नामिती, सेबी के बोर्ड में शामिल हैं। वित्त सचिव रिज़र्व बैंक के निदेशक मंडल के एक सदस्य (मताधिकार के बिना हैं।)

पुन:संतुलन के माध्यम से बैंकिंग क्षेत्र के सुधार

भारत में बैंकिंग क्षेत्र के सुधार के कुछ अनुपम पहलू हैं । भारतीय अर्थव्यवस्था में कोई बैंकिंग संकट नहीं आया। सुधारों की प्रक्रिया को सर्वोत्तम रूप में दक्षता और स्थिरता को बढ़ाने के लिए बैंकिंग क्षेत्र में क्रमिक रूप से पुनः संतुलन लाने के रूप में वर्णित की जा सकती है। काफी समय से अटकी हुई समस्याओं का आस्ति पुनर्निर्माण कंपनी (एआरसी) का सहारा लिये बिना आंतरिक रूप से प्रबंधन किया जाता था। भारत ने बैंकिंग क्षेत्र के सुधार के कुछ विशिष्ट पहलुओं को यहां गिनाया गया है।

पहला, सुधारों के उपाय बैंकों के लिए एक ऐसा समर्थक परिवेश बनाने के लिए शुरू किये गये और उन्हें क्रमिक रूप से लागू किया गया जिससे बैंक अपनी बाह्य बाधाओं, जो नियंत्रित ब्याज दर व्यवस्था, प्रारक्षित निधियों की अपेक्षाओं के माध्यम से उच्च स्तर पर निधियों के पूर्वक्रय तथा कुछ क्षेत्रों को ऋण का आबंटन से संबंधित थीं, से निपटने में समर्थ हो सकें। बैंकिंग प्रणाली में ब्याज की दरों को केवल कुछ श्रेणियों को अर्थात् बचत जमा खाते, अनिवासी भारतीय जमा, 2 लाख रुपए तक के छोटे ऋणों तथा निर्यात ऋण को छोड़कर काफी सीमा तक अपविनियमित कर दिया गया है। तथापि, सरकार की अल्प बचत योजनाओं में नियंत्रित ब्याज दरें अभी भी विद्यमान हैं। सांविधिक नकदी प्रारक्षित अपेक्षाओं को भी क्रमिक रूप से घटा दिया गया है, जबकि प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के लिए मानदंडों को तर्कसंगत बना दिया गया है।

दूसरे, जैसा कि सुधार-पूर्व अवधि में भारत में बैंकिंग प्रणाली में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का व्यापक प्रमुख था, बैंकिंग क्षेत्र की सकल आस्तियों में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का अंश 1991 के 90 प्रतिशत से गिरकर 2000 में लगभग 75 प्रतिशत रह गया, जबकि सरकार द्वारा पूर्णतः स्वाधिकृत सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का अंश इस अवधि में सभी वाणिज्यिक बैंकों की कुल आस्तियों के 90 प्रतिशत से गिरकर मात्र 10 प्रतिशत से भी कम रह गया। स्वामित्व के विशाखीकरण से महत्तर बाजार जवाबदेही तथा बेहतर दक्षता आयी है।

तीसरे, प्रतिस्पर्धा के माध्यम से बैंकिंग क्षेत्र में दक्षता और उत्पादकता बढ़ाने की दृष्टि से, निजी क्षेत्र तथा विदेशी बैंकों को प्रवेश करने की अधिक उदारतापूर्वक अनुमति दी गयी। 1993 से, 12 नए निजी क्षेत्र के बैंक स्थापित हो चुके हैं। बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ाने की दिशा में एक प्रमुख उपाय के रूप में निजी क्षेत्र के बैंकों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश करने की अब 74 प्रतिशत तक की अनुमति है, बशर्ते, समय-समय पर जारी मार्गदर्शी अपेक्षाओं का पालन किया जाए।

चौथे, सुधार की प्रक्रिया की एक और विशेषता रही है - बैंकिंग क्षेत्र में समेकन जो विकास वित्त संस्थाओं तक भी फैल गया है जो दीर्घावधि के लिए वित्त उपलब्ध कराती हैं। रिज़र्व बैंक ने बड़ी विकास वित्त संस्था का उल्टे अपनी वाणिज्यिक बैंकिंग की सहायक संस्था के साथ समामेलित होने में समर्थ बनाया जोकि यूनिवर्सल बैंकिंग की दिशा में एक प्रमुख पहल है। बाद में, एक अन्य बहुत बड़ी मीयादी ऋण दात्री संस्था को एक बैंक के रूप में रूपान्तरित किया। रिज़र्व बैंक के दिशा-निर्देशों के अधीन गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों तथा बैंकों के बीच विलयन, तथा निजी बैंकों के

बीच भी विलयन की अनुमति दी गयी है। समेकन करने के अन्तर्निहित सिद्धांत भी लागू होंगे, जैसाकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों पर लागू हैं, बशर्ते उसके लिए संगत विधान का प्रावधान किया गया हो।

पांचवें, बैंकिंग क्षेत्र के संबंध में प्रभावी तरीके से संस्थागत और कानूनी सुधार किए गये हैं। 1994 में वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड (बीएफएस) का गठन किया गया जिसमें रिज़र्व बैंक के बोर्ड से अलग-अलग प्रकार की विशेषज्ञता वाले कुछ चुनिंदा सदस्य शामिल किये गये ताकि वे 'पर्यवेक्षण पर अपना अविभाजित ध्यान दे सकें'। यह बीएफएस वाणिज्यिक बैंकों, विकास वित्त संस्थाओं, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों, शहरी सहकारी बैंकों तथा प्राथमिक व्यापारियों के पर्यवेक्षण के लिए एक समन्वित दृष्टिकोण सुनिश्चित करता है। यह गवर्नेंस (संचालन) संबंधी मुद्दों तथा पर्यवेक्षी संव्यवहारों सहित विनियामक नीतियों पर निरंतर आधार पर दिशानिदेश प्रदान करता है।

हाल ही में भुगतान और निपटान प्रणालियों के लिए विनियमन और पर्यवेक्षण बोर्ड (बीपीएसएस) का भी गठन किया गया है, जो सभी प्रकार भुगतान और निपटान प्रणालियों के विनियमन और पर्यवेक्षण से संबंधित नीतियां निर्धारित करता है, विद्यमान तथा भावी प्रणालियों के लिए मानक निर्धारित करता है, भुगतान और निपटान प्रणालियों को प्राधिकृत करता है और इन प्रणालियों के लिए सदस्यता हेतु मानदंडों का निर्धारण करता है।

ऋण सूचना कंपनी (विनियमन) अधिनियम, 2005 तथा सरकारी प्रतिभूति अधिनियम, 2004 को पारित कर दिया गया है। रिज़र्व बैंक की विनियामक तथा पर्यवेक्षी शक्तियों को बढ़ाने के लिए संसद द्वारा इसके कुछ संशोधनों के बारे में भी विचार किया जा रहा है।

छठे, प्रकटीकरण मानदंडों के माध्यम से बैंकिंग क्षेत्र में पारदर्शिता बढ़ाने के लिए अनेक उपाय शुरू किये गये हैं। उदाहरण के लिए बैंकों पर रिज़र्व बैंक द्वारा थोपी गयी पेनल्टी (शास्ति) के सभी मामले, तथा निरीक्षण से उभरनेवाले सभी मामलों सहित विशेष मामलों पर जारी सभी दिशानिदेशों को सार्वजनिक डोमेन पर रखा जा रहा है।

सातवें, विनियामक ढांचे तथा पर्यवेक्षी संव्यवहारों में, जोकि अंतर्राष्ट्रीय सर्वोत्तम संव्यवहारों के रूप में पूर्णतः परिवर्तित हो गये हैं, दो मुद्दे उल्लेखनीय हैं। पहला, जोखिम भारित आस्तियों के लिए न्यूनतम पूंजी अनुपात (सीआरएआर) को 9 प्रतिशत पर अर्थात अंतर्राष्ट्रीय मानदंड से भी एक प्रतिशत बिंदु ऊपर रखा गया है। दूसरे, बैंकों से यह अपेक्षित है कि वे अपने ब्याज दर जोखिम से निपटने के लिए अपने लाभों में से एक निवेश घटबढ़ प्रारक्षित निधि (आइएफआर) अलग से बनाये रखें। आइएफआर ने बढ़ते हुए ब्याज दर परिवेश में बैंकों द्वारा दर्ज की जानी अपेक्षित मूल्यन संबंधी हानियों के लिए कुशन रखने में सहायता की है।

जहां तक पूंजी-पर्याप्तता के लिए बासेल II ढांचे को लागू करने का प्रश्न है, वाणिज्यिक, सहकारी तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (आरआरबी) के लिए अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाया गया है जिसमें उनके आकार, परिचालनगत जटिलता, वित्तीय क्षेत्र के लिए उनके महत्व तथा महत्तर वित्तीय समावेशन प्राप्त करने की आवश्यकता को ध्यान में रखा गया है। इस प्रकार इन संस्थाओं पर लागू पूंजी-पर्याप्तता मानदंड भी तर्कसंगतता के आधार पर अलग-अलग स्तरों पर बनाये रखने होंगे और यह कहा जा सकता है कि जहां तक पूंजी-पर्याप्तता के नियमों का संबंध है हम तीन मार्गीय दृष्टिकोण अपना रहे हैं। पहले मार्ग पर, वाणिज्यिक बैंकों से यह अपेक्षित है कि वे ऋण और बाजार जोखिम दोनों के लिए पूंजी बनाये रखें जैसाकि बासेल I ढांचे में अपेक्षित था। दूसरे मार्ग पर सहकारी बैंकों से यह अपेक्षित है कि वे बासेल I में यथा अपेक्षित ऋण जोखिम

के लिए पूंजी बनाये रखें तथा बाजार जोखिम के लिए प्रतिनिधि की प्रतिनियुक्ति करें। तीसरे मार्ग पर आरआरबी को न्यूनतम पूंजी की अपेक्षा की गयी है, तथापि वह भी बासेल I ढांचे के समतुल्य नहीं है।

जहां तक बासेल II ढांचे को लागू करने में समय सारिणी का प्रश्न है, भारत में कार्यरत विदेशी बैंकों तथा विदेशों में शाखाओं वाले भारतीय बैंकों को यह अपेक्षित है कि वे 31 मार्च 2008 से ऋण जोखिम के लिए मानकीकृत दृष्टिकोण तथा परिचालनगत जोखिम के लिए बुनियादी संकेतक दृष्टिकोण को अपनायें। अन्य सभी वाणिज्यिक बैंकों से यह अपेक्षित है कि वे इन दृष्टिकोण को 31मार्च 2009 से पहले-पहले अपना लें।

आठवें, भारत में विनियामक ढांचा उत्तरोत्तर रूप में बैंकों के मालिकों, निदेशकों और वरिष्ठ प्रबंधकों के लिए '' फिट और प्रॉपर'' अर्थात 'सही और उपयुक्त' के माध्यम से बेहतर संचालन सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित कर रहा है। 5 प्रतिशत या उससे अधिक की शेयरधारिता के अंतरण के लिए रिज़र्व बैंक की पावती अपेक्षित है तथा ऐसे महत्वपूर्ण शेयरधारकों को ' सही और उपयुक्त' के परीक्षण से गुजरना पड़ता है। बैंकों से यह अपेक्षित है कि वे नामित और चुने गये निदेशकों को नामांकन समिति को 'सही और उपयुक्त' के मानदंड पर खरे उतरने के लिए संतुष्ट करें। निदेशकों से भी यह अपेक्षित है कि वे प्रसंविदा पत्र पर हस्ताक्षर करें जिसमें उनकी भूमिका और उत्तरदायित्वों का उल्लेख किया गया हो। रिज़र्व बैंक ने निजी क्षेत्र के बैंकों में स्वामित्व और गवर्नेंस के मामले में विस्तृत मार्गदर्शी दिशानिदेश जारी किये हैं जिसमें स्वामित्व को विशाखीकृत करने पर जोर दिया गया है। सूचीबद्ध बैंकों से यह भी अपेक्षित है कि वे प्रतिभूति बाजार के विनियामक सेबी द्वारा निर्धारित गवर्नेंस के सिद्धांतों का भी पालन करें।

निष्कर्षात्मक टिप्पणियां

भारतीय अर्थव्यवस्था में होनेवाली गतिविधियां अनेक कारणों से वैश्विक ध्यान आकर्षित कर रही हैं जैसे - अर्थव्यवस्था का आकार, वृद्धि में हाल में आयी तेजी, स्थिरता को बनाये रखना, प्रभावपूर्ण उत्पादकता में वृद्धियां, जनसंख्यागत लाभांश आदि । सरकारी नीति की रूपरेखा मुख्य रूप से घरेलू रूप से संरक्षित है, जो देश के संदर्भ में उसके लिए उपयुक्त है, साथ ही उसका विश्व की सर्वोत्तम परम्पराओं के साथ सामंजस्य बैठाया जा रहा है। निःसंदेह अनेक चुनौतियां भी हैं, विशेषकर वे जो गरीबी, साक्षरता और स्वास्थ्य की देखभाल से जुड़ी हुई हैं, जो उच्च प्राथमिकता की मांग करती है। हम इन मुद्दों को लोकतांत्रिक व्यवस्था में, सहभागितापूर्ण प्रक्रिया के माध्यम से सुलझाने में लगे हुए हैं। हम अपने प्रयासों में विश्व की समझबूझ तथा समर्थन की आशा करते हैं। इस संदर्भ में मैं गवर्नर कोर्बो के प्रति अपना आभार व्यक्त करना चाहूंगा जिन्होंने मुझे आमंत्रित किया है कि मैं आप लोगों को समावेशनपरक वृद्धि की ओर हमारी यात्रा के संबंध में संक्षेप में आपको परिचित करा सकूं। मैं की गयी सर्वोत्तम व्यवस्थाओं तथा सेंट्रल बैंक ऑफ चिली द्वारा मुझे उपलब्ध कराये गये सौजन्य के लिए भी आभारी हूं।